प्रकाशकीय

इस पुस्तिका में स्वामी रामतीर्थ के ग्रंथों में से चुनकर सामग्री इकट्ठी की गई है। संकलन करते समय इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा गया है कि स्कूलों और कालेजों के छात्र और छात्राओं के चरित्र-निर्माण की दृष्टि से जो विचार स्वामीजी ने प्रकट किये हैं वे इस पुस्तिका में अवश्य आ जायँ। यह सब जानते हैं कि नये भारत का निर्माण करने वालों में स्वामी रामतीर्थ का स्थान बहुत ऊँचा है। उन्होंने गिरे हुए भारत में आत्म-विश्वास पैदा करने के लिए जो ज्योति जगाई थी, उससे आज भी उतना ही लाभ उठाया जा सकता है, जितना उनके समय में उठाया गया था। स्वामीजी की मान्यता थी कि मनुष्य के अपने अन्दर शक्ति का स्रोत है। उसे निराश और निरुत्साहित नहीं होना चाहिए।

ऐसे सन्देश को जितने व्यक्ति पढ़ें उतना ही अच्छा है। इसलिए पुस्तकें लाखों की संख्या में छपनी उचित हैं। यह काम राज्यों के शिक्षा-विभागों की सहायता और सहयोग से बड़ी सरलता से हो सकता है। वे इस पुस्तिका को अपने राज्य के स्कूलों और कालेजों के पढ़ने के लिए स्वीकृत कर सकते है। युवकों को सच्चा नागरिक बनने में सहायता देना राष्ट्रीय कर्त्तव्य है। उस कर्त्तव्य को पूरा करने के लिए जो कुछ भी किया जाय, थोड़ा है।

जनता से, विशेषकर विद्यार्थी-वर्ग से, हमारा अनुरोध है कि इस पुस्तक को पढ़ें और इसमें कही गई बातों पर विचार करें। वे देखेंगे कि उनके हृदय का कायरता-रूपी अन्धकार मिटेगा और उत्साह एवं आत्मविश्वास का उज्ज्वल प्रकाश भरेगा। पुस्तक की सामग्री रामतीर्थ प्रतिष्ठान लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त हुई है और इसकी तैयारी में हिन्दी के सुपरिचित लेखक श्री विष्णु प्रभाकर का सहयोग रहा है। हम दोनों के आभारी है।

सातवां संस्करण

हमें हर्ष है कि पुस्तक का सातवां संस्करण पाठकों के हाथों में पहुच रहा है। हम आशा करते है कि भविष्य में इस पुस्तक की लोक-प्रियता और बढ़ेगी।

—मंत्री

विषय-सूची

१. देव-मन्दिर	(कविता)	५
२. काम		६
३. आत्म-त्याग		७
४. आत्म-विस्मृति		६
५. सार्वभौमिक प्रेम		११
६. प्रसन्नता		१२
७. निर्भीकता		१५
८. आत्म-निर्भरता		१७
९. ईश्वर की पहचान	(कहानी)	२१
१०. महत् अहं	(कविता)	२६
११. हृदय की रचना	(कहानी)	२८
१२. आध्यात्मिक शक्ति		२९
१३. प्रकृति-दर्शन		३८
१४. मनुष्य की इकाई		४७
१५. वर्धनशील वेदान्त		५२

रामतीर्थ—संदेश

[तीसरा भाग]

: १ :

देव-मन्दिर

मेरा यह हृदय देव-मन्दिर इसके भीतर
जल रहा प्यार का दीप, रहा निज वैभव बिखेर ।
तीखे कांटों से घिरा भले ही प्यार-सुमन,
पर मुक्त भाव से लुटा रहा निज सौरभ[१] धन ।
आनन्द तरंगित[२] अमर ज्योति का यह निर्झर,
हो रहा प्रवाहित निज प्रकाश-वैभव लेकर ।
स्वर्णाभ पंखोंवाले स्वतंत्र ये विहग सुघर[३],
हैं सुना रहे आनन्द-प्रशंसा के गायन ।
रंगीन बनी मधुऋतु[४] के ये लघु शिशु सुन्दर,
कर रहे मधुर कराठों से गाकर अभिनन्दन[५] ।
ऊषा फैलाकर रंग गुलाबी मनभावन,
पर्वत, सर मैदानों की सजा रही शोभन ।
करुणा का यह प्रकाश परिवेश[६] अनन्त सघन,
कर रहा अमृत शीतल धारा का मृदु वर्षण[७] ।
सतरंगा इन्द्रधनुष नभ का लें आकर्षण,
रंग रहा क्षितिज विस्तार बिखर, मुस्कान किरण !

---

[१]सुगंध, [२]लहरें मारता हुआ, [३]सुन्दर, [४]बसन्त, [५]वन्दना, [६]घेरा, [७]वर्षा,

: २ :

काम

सबसे पहले हमें यह प्रश्न चारों ओर से घेरनेवाली प्रकृति से करना चाहिए। कल-कल ध्वनि से बहनेवाले निर्झर और एक ही स्थान में बद्ध रहनेवाले तालाब अपनी मूक और असंदिग्ध भाषा में हमें निरन्तर एक ही उपदेश दिया करते हैं—निरन्तर काम करो, अहर्निश काम करो। प्रकाश हमें देखने की शक्ति प्रदान करता है। प्रकाश ही प्राणिमात्र का प्राण और मुख्य आधार है। आओ, देखें स्वयं प्रकाश के द्वारा इस प्रश्न पर क्या प्रकाश पड़ता है। राम[1], उदाहरण के लिए एक लैंप, साधारण दीपक को ही लेगा। दीपक की चमक और प्रकाश का भीतरी रहस्य क्या है? वह कभी अपने तैल और बत्ती का बचाव नहीं करता। तैल और बत्ती अथवा उसकी क्षुद्र आत्मा निरंतर जलती रहती है। तभी उसका प्राकृतिक परिणाम होता है प्रकाश और प्रताप। लो, लैंप का संदेश हो चुका—अपने का बचाव करो और तुम्हारा नाश हो जायगा। यदि तुम अपने शरीर के लिए सुख और विश्राम चाहते हो, यदि अपना सारा समय भोग-विलास और इन्द्रिय-सुखों में गँवाते रहते हो तो तुम्हारे लिए कोई आशा नहीं। दूसरे शब्दों में इसका अर्थ यह हुआ कि अकर्मण्यता मृत्यु रूप है। केवल काम और क्रिया ही

---

[1]स्वामी रामतीर्थ

हमारा जीवन और प्राण है। एक और चौहद्दी से घिरा हुआ तालाब है और दूसरी ओर बहती हुई सरिता। दोनों की तुलना करो। बहती हुई नदी का जल मोती-जैसा स्वच्छ, तरोताजा, निर्मल, पीने योग्य और चित्ताकर्षक रहता है। इसके विरुद्ध एक घिरे हुए तालाब का पानी कितना गंदा, बदबूदार, मैला और चिपचिपानेवाला होता है। यदि तुम सफलता चाहते हो तो कार्य का मार्ग, सरिता की निरन्तर गति का अनुसरण करो। जो मनुष्य अपने तैल और बत्ती का व्यय न करेगा, अपितु उसकी रक्षा में ही अपना सारा समय लगा देगा, उसके लिए आशा का कोई मार्ग नहीं। नदी की नीति को ग्रहण करो, जो सदा आगे-ही-आगे बढ़ती है, जो सदैव अपने-आपको परिस्थितियों के अनुकूल बनाती हुई अपना व्यवहार बढ़ाती जाती है और गति ही जिसका जीवन हो रहा है। कार्य, निरन्तर कार्य, अटूट कार्य ही सफलता का पहला सिद्धान्त है। 'नित्यप्रति उत्तम से उत्तमतर बनते जाओ।'—यदि तुम इस सिद्धान्त पर चलो तो बड़ा बनना तुम्हारे लिए उतना ही आसान होगा जितना छोटा रह जाना।

: ३ :

आत्म-त्याग

प्रत्येक व्यक्ति सफेद, श्वेत वस्तुओं को प्यार करता है। आओ देखें, श्वेत वस्तुएँ क्योंकर मनुष्यमात्र की प्रेम-पात्र बन जाती हैं। हमें श्वेत की सफलता का

पता लगाना होगा। काली चीजों से सभी लोग घृणा करते हैं। उन्हें तुच्छ समझते हैं, फेंक देते हैं। यह एक तथ्य है। हमें इसके कारण की खोज करनी होगी। प्रकृति-विज्ञान हमें रंगों के प्रदर्शन का रहस्य बतलाता है। लाल लाल नहीं है, हरा हरा नहीं है, काला काला नहीं है। वस्तुतः जैसा हम देखते हैं, वह वैसा नहीं है। गुलाब के लाल पुष्प में वह लालिमा कहाँ से आती है? वह स्वयं उसकी फेंकी हुई चीज है। सूर्य की किरणों के और सब रंग तो उसने अपने अन्तर में पचा लिये हैं। किसी को गुलाब द्वारा पचाये हुए इन रंगों का पता नहीं चलता। हरा पत्ता प्रकाश के अन्य सब रंग अपने में आत्मसात् कर लेता है और केवल उस एक हरे ताजे रंग के द्वारा प्रकट होता है, जिसे वह अपने भीतर लेने से इनकार करता है और बाहर फेंक देता है। काली वस्तुओं का यह स्वभाव होता है कि वे प्रकाश के सारे रंगों को खा लेती हैं और प्रकाश का नामोनिशान भी बाकी नहीं छोड़तीं। उनमें आत्म-त्याग की भावना नहीं रहती। उदारता रंचमात्र भी नहीं होती। वे किरण की एक रेखा भी नहीं त्याग सकतीं। सूर्य-किरणों, जो उन्हें अपने हिस्से में मिलाती हैं, वे सब-का-सब खा जाती हैं। प्रकृति हमें आदेश देती है कि इसी प्रकार वह मनुष्य जो अपने में से रत्तीभर भी अपने पड़ोसियों को नहीं देता, वह काला, कोयला जैसा काला हो जायगा। श्वेत वस्तुओं के सद्गुण को ग्रहण करो और तुम सफल हुए बिना नहीं रह सकते। श्वेत से राम का क्या

अभिप्राय है ? यूरोप-निवासी श्वेतांग ? नहीं, केवल श्वेतांग यूरोपियन ही नहीं स्वच्छ दर्पण, स्वच्छ मोती, सफेद फ़ाख्ता, स्वच्छ हिम—संक्षेप में, पवित्रता और सच्चाई-सूचक सभी सुन्दर चिह्न इस विषय में तुम्हारे पथ-प्रदर्शक बन सकते हैं। उनका मार्ग ग्रहण करो और बिना किसी संदेह के आत्म-त्याग की भावना को सीख लो। जो कुछ दूसरों से लिया हो, उसे दूसरों को ही दे डालो। केवल अपने लिए संग्रह करने के पथ से हट जाओ और अपने-आप स्वच्छ बन जाओगे। बीज यदि चाहता है कि एक सुन्दर कलिका के रूप में खिले तो पहले उसे अपने-आपको खाद में गला देना होगा। पूर्ण आत्म-बलिदान अंत में फल जाता है। उसका फल लाना अनिवार्य है। सभी शिक्षक और उपदेशक राम की इस बात को मान्य करेंगे कि हम जितना ही अधिक बांटते हैं, उतना ही अधिक पाने के अधिकारी बनते जाते हैं।

: ४ :

आत्म-विस्मृति

विद्यार्थियों को इस बात का अनुभव होगा कि जब वे अपनी साहित्यिक गोष्ठी में भाषण करते हैं तो ज्योंही "मैं भाषण कर रहा हूँ" यह विचार उनके मन में जोर से प्रकट होता है त्यों ही व्याख्यान फीका पड़ जाता है। काम करते हुए अपनी क्षुद्र आत्मा को भूल

जाओ, पूर्णतः उसमें अपने-आपको डुबो दो, तब अवश्य ही सफल होगे। यदि कुछ सोचते हो तो स्वयं सोच-विचार बन जाओ, अवश्य ही सफलता मिलेगी। यदि काम करते हो तो काम बन जाओ, सफलता अवश्य मिलेगी।

"मैं कब स्वतन्त्र होऊँगा ?
जब मिट जायगी 'मैं' !"

दो भारतीय राजपूतों का एक किस्सा है। वे एक बार अकबर, भारतवर्ष के बड़े मुगल शहंशाह, के पास पहुँचे और नौकरी के लिए प्रार्थना करने लगे। अकबर ने उनकी योग्यता के बारे में पूछताछ की। उन्होंने कहा—वे शूरवीर हैं। अकबर ने पूछा—प्रमाण ? दोनों ने तुरन्त म्यान से अपनी-अपनी तलवारें निकाल लीं। क्षण भर के लिए अकबर के दरबार में बिजली कौंध गई। खंजरों की चमक उनकी अन्तरंग वीरता की सूचक थी। दूसरे ही क्षण बिजली की इन दोनों कौंधों ने दोनों शरीरों को एक कर दिया। दोनों ने अपनी-अपनी तलवार को एक दूसरे की छाती पर गड़ा दिया। नहीं, दोनों ने उसे दूसरे की छाती में ऐसी धीरता से घुसेड़ दिया, जो संसार में बहुत ही कम देखी जाती है। उनकी वीरता का प्रमाण पूरा हुआ। शरीर गिर पड़े, आत्माएँ मिल गईं। सबने उनकी वीरता पर साधुवाद दिया। किस्से से हमें विशेष प्रयोजन नहीं। इस उन्नत युग में ऐसी शूरता से

हमारे हृदय को चोट पहुँच सकती है; किन्तु उससे हमें एक शिक्षा मिलती है। वह शिक्षा है, अपने क्षुद्र अहं का त्याग करो, सफलता तुम्हारे हाथ जोड़ेगी, अन्यथा हो ही नहीं सकता। राम कहता है कि काम करते-करते सफलता की इच्छा मर जाय तो सफलता तुम्हारे सामने खड़ी है।

: ५ :

सार्वभौमिक प्रेम

'प्रेम' सफलता का एक दूसरा सिद्धान्त है। प्रेम करो और लोग तुमसे प्रेम करेंगे। बस, यही लक्ष्य है। हाथ, यदि जीवित रहना चाहता है तो उसे शरीर के अन्य अंगों से प्रेम करना होगा। यदि वह अपनेको सबसे पृथक् कर ले और सोचे कि मेरी कमाई से दूसरे अंग क्यों लाभ उठायें तो हाथ का काम हो चुका, उसका मरण अनिवार्य है। यदि हाथ अपनी स्वार्थ-वृत्ति पर डट जाय तो उसे मुख में उस खान और पान को रखने की क्या आवश्यकता है, जिसे वह केवल अपने परिश्रम के बल पर प्राप्त करता है, चाहे उसने वह परिश्रम कलम के द्वारा किया हो अथवा तलवार के द्वारा। उस स्थिति में भोजन के उत्तमोत्तम पदार्थ उसे अपने चर्म में ही घुसा लेने चाहिए। तभी वह दूसरे अंगों को अपनी कमाई से वंचित कर सकता है। हाँ, यदि उसे अपना फुलाना ही इष्ट हो तो वह किसी विषैली मक्खी से भी अपनेको कटवा सकता है;

किन्तु सूजन हानि के सिवा लाभ नहीं पहुँचा सकती। सूजन की मोटाई स्वास्थ्य का लक्षण नहीं। फूला हुआ हाथ अवश्य एक-न-एक दिन अपने स्वार्थ के कारण भर मिटेगा। हाथ केवल तभी फल-फूल सकता है, जब वह व्यवहार में, शरीर के अन्य अंगों के साथ, अपनी वास्तविक आत्मीयता का अनुभव करे, और अपनी भलाई को सम्पूर्ण शरीर की भलाई से किसी भी प्रकार अलग न समझे।

जिसे हम सहयोग कहते हैं, वह इसी प्रेम का बाहरी रूप है। तुमने सहयोग, सहकारिता के लाभों के विषय में बहुत-कुछ सुना होगा। राम को यहाँ उसके गुण गाने की आवश्यकता नहीं। तुम्हारे हृदय में भरे हुए प्रेम से ही उसका जन्म हो। प्रेम रूप बन जाओ और सफलता तुम्हारी बनी-बनाई है। जो व्यापारी ग्राहकों के लाभ में ही अपना लाभ नहीं मानता, वह सफल नहीं हो सकता। फलने-फूलने के लिए उसे अपने ग्राहकों से प्रेम करना होगा। उसे अपने सम्पूर्ण हृदय से उनकी भलाई का ध्यान करना होगा।

: ६ :

प्रसन्नता

सफलता के सम्पादन में जो बात महत्वपूर्ण कार्य करती है—वह है प्रसन्नता। आप जापानी लोग, राम के भाई हैं। राम को प्रसन्नता है कि आप

लोग स्वभाव से ही प्रसन्नचित्त हैं। तुम्हारे हरे-भरे चेहरों पर प्रसन्नता की मुस्कराहट देखकर राम को बड़ी प्रसन्नता होती है। तुम हँसते हुए फूल हो। तुम मनुष्य-जाति की मुस्करानेवाली कलिका हो। तुम प्रसन्नता के अवतार हो। सो राम चाहता है कि तुम अपने जीवन के इस शुभ लक्षण को अपने इतिहास के अन्त तक स्थिर रखो। राम तुमको बतायेगा कि यह कैसे हो सकता है!

अपने परिश्रम के फल के लिए कभी चिन्तित मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो। भय को हृदय में स्थान मत दो। न सफलता की बात सोचो और न असफलता की। काम के लिए काम करो। काम स्वयं अपना पारितोषिक है। भूतकाल के पीछे उदास मत हो। भविष्य की चिन्ता मत करो। वर्तमान में, प्रत्यक्ष वर्तमान में, काम करो। दिन-रात काम करो। इस प्रकार की भावना तुम्हें हरेक परिस्थिति में प्रसन्न रखेगी। एक सजीव बीज में फलने-फूलने का गुण होता है। प्रेमपूर्ण सहानुभूति का अटल नियम है कि उस सजीव बीज को आवश्यकतानुसार वायु, जल पृथ्वी और प्रकाशादि मिलना ही चाहिए। ठीक इसी भाँति एक प्रसन्नचित्त कार्यकर्ता को हर प्रकार की सहायता का वचन प्रकृति ने पहले ही से दे रखा है। "आगे का मार्ग अपने-आप सूझ पड़ेगा, यदि जितना ज्ञात है, उतना यथार्थ रूप में पार कर लेते हो।" यदि अंधेरी रात्रि में तुम्हें बीस मील की यात्रा का अवसर आ

पड़े और यदि हाथ का दीपक केवल दस फुट तक ही प्रकाश फेंकता हो तो उस संपूर्ण अँधेरे मार्ग की चिन्ता से क्यों मरे जाते हो ? तुम्हें अँधेरे में एक पग भी नहीं धरना पड़ेगा। इसी प्रकार एक सच्चे कार्य-तत्पर कार्यकर्ता को कभी अपने पथ में कोई अव्यर्थ बाधा नहीं मिलती, यह प्रकृति का एक अनिवार्य नियम है। फिर भविष्य की घटना की चिन्ताओं से क्यों अपने हृदय के उल्लास को ठंडा करते हो ? वह मनुष्य, जिसे तैरना बिल्कुल नहीं आता, यदि वह भी एक बार सहसा झील में गिर पड़े तो वह भी कभी डूब नहीं सकता, यदि केवल अपने शरीर का समभारत्व बराबर बनाये रखे। मनुष्य का भार-विशेषत्व (Specific gravity) जल के भार-विशेषत्व से कम होता है। अतः जल के धरातल पर तैरने में उसको कोई बाधा नहीं हो सकती, किन्तु ऐसे अवसर पर साधारण प्राणी एकदम अस्थिर चित्त हो जाते हैं, मात्र पानी के ऊपर रहने की चेष्टा में ही पानी में डूब जाते हैं। इसी प्रकार प्रायः भविष्य की सफलता के लिए चिन्ताकुल होने से ही असफलता का सूत्रपात होता है।

आओ, अब हम उस विचारधारा का निरीक्षण करें, जिसके कारण हम भविष्य की ओर आँखें लगाये रहते हैं। इसका उदाहरण यों हो सकता है कि मनुष्य स्वयं अपनी छाया को पकड़ना चाहता है। वह चाहे अनन्त काल तक ऐसा उद्योग करता रहे, वह कदापि, त्रिकाल में भी, उसे पकड़ने में समर्थ नहीं हो सकता।

पर यदि वह छाया से मुँह मोड़ ले और पूर्य की ओर मुँह कर ले तो वही छाया उसके पीछे दौड़ना प्रारम्भ कर देगी। जिस क्षण तुम सफलता से मुँह मोड़ लेते हो, ज्योंही तुम फलादि की चिन्ता से मुक्त हो जाते हो, और वर्तमान कर्तव्य पर अपनी सारी शक्ति केन्द्रित कर देते हो, बस, उसी क्षण सफलता तुमसे आ मिलती है। नहीं-नहीं, तुम्हारा पीछा करने लगती है। इसलिए सफलता का पीछा मत करो, सफलता को अपना ध्येय मत बनाओ और तभी, उसी समय सफलता स्वयं तुम्हें ढूंढने लगेगी। न्यायालय में न्यायाधीश को वादी-प्रतिवादी, वकील अथवा चपरासियों को खोजना नहीं पड़ता। उसे तो केवल न्यायासन पर बैठ भर जाना होता है, और न्यायालय का सारा व्यवहार अपने-आप चल पड़ता है। यही अन्तिम तथ्य है। पूर्ण प्रसन्नता के लिए जिन-जिन बातों की आवश्यकता होगी, वे सब अपने-आप आ मिलेंगी।

: ७ :

निर्भीकता

एक बात, जिसपर राम आपका ध्यान खींचना चाहता है और बारंबार आदेश करता है कि आप उसे अपने अनुभव से सिद्ध करें, वह है निर्भीकता। एक भ्रू-निक्षेप से शेरों को वश में किया जा सकता है।

एक ही दृष्टि-निक्षेप से शत्रु परास्त किये जा सकते हैं। निर्भीकता की एक ही झड़प से विजय प्राप्त की जा सकती है। राम ने हिमालय की सघन घाटियों में विचरण किया है। राम को शेर, चीते, भालू एवं अनेक विषैले जीव-जन्तुओं का सामना करना पड़ा; परन्तु राम को कभी किसी ने हानि नहीं पहुँचाई। जंगली पशुओं पर सीधे उनकी आँखों पर भ्रू-निक्षेप किया गया, दृष्टियाँ मिलीं, हिंसक पशुओं ने आँखें नीची कर लीं और जिन्हें हम अत्यन्त भयानक जंगली पशु समझते हैं, वे चुपचाप खिसक गये। यही तथ्य है। निर्भीक बनो और तुम्हें कोई हानि नहीं पहुँचा सकता।

शायद तुमने कभी देखा हो कि कबूतर कैसे बिल्ली के सामने अपनी आँखें बन्द कर लेता है और शायद अपने मन में सोचता हो कि जैसे मैं बिल्ली को नहीं देखता हूँ वैसे ही बिल्ली भी मुझे नहीं देखती होगी; किन्तु होता क्या है? बिल्ली कबूतर पर झपटती है और कबूतर बिल्ली के पेट में जा पड़ता है। निर्भीकता से चीता भी वश में किया जा सकता है और भयातुर के सामने बिल्ली भी शेर बन जाती है।

तुमने यह भी देखा होगा कि काँपते हुए हाथ से कोई तरल पदार्थ एक बर्तन से दूसरे बर्तन में सफलता-पूर्वक नहीं उँडेला जा सकता; किन्तु कैसी आसानी से एक सुदृढ़ और निर्भीक हाथ बिना एक बूँद गिराये उस बहुमूल्य तरल पदार्थ का आदान-प्रदान कर लेता है। प्रकृति स्वयं हमें बार-बार उच्च स्वर से इसी

निर्भीकता की शिक्षा देती रहती है।

एक बार एक पंजाबी सिपाही किसी जहाज पर एक भयानक रोग से आक्रान्त हो गया और डाक्टर ने उसे जहाज से नीचे फेंक देने का अन्तिम दण्ड सुना दिया। कभी-कभी डाक्टर भयंकर दण्ड दे डालते हैं। सिपाही को इस बात का पता चल गया। साधारण प्राणी भी कभी-कभी मृत्यु के सामने निर्भीकता की झलक दिखा जाता है। असीम शक्ति से वह तुरन्त बिस्तर से उठ बैठा और एकदम निर्भय हो गया। तुरन्त सीधा डाक्टर के पास पहुँचा और पिस्तौल तानकर बोला "मैं, बीमार हूँ? क्या मैं बीमार हूँ? सच-सच बोलो, नहीं तो मैं अभी मारता हूँ।" डाक्टर ने तुरन्त उसे स्वस्थ होने का प्रमाण-पत्र दे दिया। निराशा कमजोरी है, उससे बचो। निर्भीकता ही शक्ति-पुंज है। राम के शब्दों पर ध्यान दो और निर्भय बनो।

: ८ :

आत्म-निर्भरता

सफल जीवन का नैसर्गिक, अन्तिम किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्धान्त, एक प्रकार से सफलता का प्राण, सफलता की मुख्य कुंजी है आत्म-निर्भरता और आत्म-विश्वास। यदि राम से एक शब्द में राम का सम्पूर्ण दर्शन-शास्त्र भर देने का आग्रह किया जाय तो राम यही कहेगा—वह है आत्मविश्वास; आत्म-ज्ञान! ऐ

मनुष्यो ! देखो, सुनो, अपने-आपको पहचानो । सत्य, अक्षरशः सत्य है कि जब तुम स्वयं अपनी सहायता, करते हो तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करता है। नहीं वह तुम्हारी सहायता करने के लिए बाध्य है । यह बात सिद्ध की जा सकती है। इस तथ्य को साक्षात् किया जा सकता है कि तुम्हारी आत्मा, वास्तविक आत्मा ईश्वर, अनन्त ईश्वर, सर्वशक्ति-संपन्न ईश्वर है। यह एक सच्चाई है, एक सत्य है, तुम स्वयं प्रयोग करके देख लो । निश्चय से पूर्ण निश्चय से, अपने ऊपर निर्भर करो और फिर जगत में तुम्हें कुछ भी दुर्लभ नहीं, तुम्हारे लिए दुनिया में कुछ भी असंभव नहीं ।

सिंह जंगल का राजा है। वह स्वयं अपने ऊपर निर्भर रहता है । उसमें साहस है, शक्ति है, कोई बाधा उसका मार्ग नहीं रोक सकती । क्यों ? क्योंकि उसे अपने में विश्वास है। और हाथियों को देखो, जिन्हें विशालकाय होने के कारण पहली दृष्टि में यूनानियों ने सच ही 'चलते-फिरते पर्वत' के नाम से पुकारा था; वे सदा शत्रुओं से सशंकित रहते हैं । वे सर्वदा झुण्डों में रहते हैं और सोते समय अपने चारों ओर पहरेदार नियत कर लेते हैं। एक भी उनमें से अपने ऊपर निर्भर नहीं करता और न अपनी विशाल शक्ति का अनुभव करता है । वे अपने को शक्तिहीन मानते हैं और एक सिंह के समक्ष झुण्ड-का-झुण्ड भाग खड़ा होता है, जबकि एक ही हाथी, 'एक ही चलता-फिरता पहाड़'

बीसों शेरों को अपने पैरों से रौंदकर मिट्टी में मिला सकता है ।

एक बड़ी शिक्षाप्रद कहानी है । दो भाई थे । दोनों को अपनी पैतृक सम्पत्ति में एक-सा—समान भाग मिला था; किन्तु कुछ काल के पश्चात् एक तो दरिद्रता की सीमा पर पहुँच गया और दूसरे ने अपनी सम्पत्ति दस गुना बढ़ा ली । जो लखपति हो गया था, एक बार उससे प्रश्न किया गया—इतना अन्तर कैसे हुआ ? उसने उत्तर दिया कि मेरा भाई सदा कहता है—"जाओ, जाओ" और मैं सदा कहता हूँ—"आओ आओ ।" इसका तात्पर्य यह हुआ कि एक भाई हर समय नौकरों से कहा करता था—"जाओ, और यह काम कर लाओ ।" इतनी आज्ञा देने के अतिरिक्त उसने कभी गुदगुदे मखमली गद्दों से नीचे पैर नहीं रखा । दूसरा सदा कमर कसे अपने काम में जुटा रहा । उसने सदा अपने नौकरों से कहा—"आओ, आओ, इस काम में मेरा हाथ बँटाओ ।" वह अपनी शक्ति पर निर्भर करता और शक्ति भर नौकरों से काम लेता था । फल यह हुआ कि उसकी सम्पत्ति कई गुना बढ़ गई । दूसरा अपने नौकरों से 'जाओ, जाओ' ही कहता रहा । वे चले गये और उसकी आज्ञा मानकर उसकी सम्पत्ति भी बिदा हो गई और अन्त में रह गया वह बिल्कुल अकेला । राम कहता है—'आओ, आओ, राम की सफलता और आनन्द का उपभोग करो । इसलिए भाइयो, मित्रों और देशवासियो ! एक ही तथ्य है—मनुष्य स्वयं अपने भाग्य का विधाता है ।

किसी भी बाहरी शक्ति पर—देवी-देवता या कथा-पुराण पर—आश्रित रहने के लिए कहीं कोई स्थान नहीं है, अपना केन्द्र तो अपने अन्तर में है। स्वतन्त्र मनुष्य भी एक प्रकार से बँधा हुआ है, क्योंकि स्वतन्त्र है। उसी स्वतन्त्रता से हम श्री-सम्पन्न बनते हैं और अपनी उसी स्वतन्त्रता के कारण हम गुलाम हो जाते हैं। फिर हम क्यों रोयें-धोयें और झक मारें ? अपनी सच्ची वास्तविक स्वतन्त्रता ही का उपयोग क्यों न करें, जिससे शारीरिक और सामाजिक सभी बन्धन कट जाते हैं।

जो धर्म आज राम जापान[1] को सुना रहा है, वह ठीक वही धर्म है, जो आज से शताब्दियों पूर्व भगवान् बुद्ध के अनुयायी यहाँ लाये थे; किन्तु आज उसे वर्तमान युग की आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने के लिए उसकी नई व्याख्या होनी चाहिए। हम उसे पाश्चात्य विज्ञान और दर्शन की प्रभा से आलोकित कर देंगे।

राम के धर्म के आवश्यक और आधारभूत सिद्धान्त 'गेटे' के शब्दों में यों व्यक्त किये जा सकते हैं :

"यदि मुझे कहना पड़े, क्या मनुष्य का बड़े-से-बड़ा काम

तो मेरे पहले था ही नहीं जगत !

वह है मेरी सृष्टि !

[1]स्वामी रामतीर्थ टोकियो में भाषण दे रहे थे

वह मैं ही हूँ जिसने सूर्य को चमकाया
आकाश में, समुद्र की गिरि-गुहा से निकालकर।
वह मैं हूँ जिसके लिए
चन्द्रमा रंग बदला करता है नित्य-नित्य।"

बस, एक बार इसका अनुभव करो और तुम इसी क्षण मुक्त हो। एक बार इसे प्रत्यक्ष करो और तुम सदा सफलीभूत हो। एक बार इसे हृदय में बिठा लो और नरक की भयानक गन्दी कोठरियाँ तुरन्त स्वर्ग के आनन्द-कानन में परिणत हो जायँगी।[1]

: ६ :

ईश्वर की पहचान

किसी समय एक सुशिक्षित काजी मुसलमानी राज्य में एक बादशाह के पास गया। बादशाह काजी के धार्मिक ज्ञान के दावे के कारण उसका बड़ा सम्मान करता था। फिर भी उसने काज़ी की योग्यता की परीक्षा लेनी चाही। बादशाह स्वयं विद्वान न था किन्तु एक दूसरे व्यक्ति ने, जो स्वयं काज़ी बनना चाहता था, उसको कुछ मजेदार प्रश्न सुझा दिये थे। इसलिए काज़ी के पहुँचते ही बादशाह ने पूछा—आप मुझे

[1] २ से ८ तक के पाठ स्वामी रामतीर्थ के टोकियो में दिये गए 'सफलता के रहस्य' नामक भाषण से तैयार किये गए हैं।

यह बताइये—"ईश्वर का मुख किस ओर है, ईश्वर कहाँ बैठता है, वह क्या खाता है और क्या काम करता है ?" बादशाह ने काज़ी से कहा, "यदि आप इन प्रश्नों का सन्तोषजनक उत्तर दे देंगे तो आपकी पद-वृद्धि की जायगी।" काज़ी ने सोचा कि बादशाह ने जो प्रश्न पूछे हैं, वे अवश्य ही अति कठिन होंगे। वह तो केवल प्रशंसा करके बादशाह को प्रसन्न करना चाहता था। वह उसकी चापलूसी करना जानता था। बादशाह की बात सुनकर उसने इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए आठ दिन का अवकाश माँगा।

आठ दिन तक काज़ी बराबर सोचता रहा, किन्तु किसी निश्चित परिणाम पर न पहुँच सका। वह सोचता—बादशाह को संतोषजनक उत्तर कैसे दिया जाय ? अंत में आठवाँ दिन आ पहुँचा, किन्तु काज़ी को उन प्रश्नों के कोई उत्तर न सूझे। तब और अवकाश पाने के निमित्त उसने बीमार होने का बहाना किया। इसपर काज़ी के नौकर, पाजी, ने अपने मालिक से यह जानना चाहा कि आखिर मामला क्या है ? काज़ी ने कहा—"भाग यहाँ से, मुझे तंग मत कर। मैं मरनेवाला हूँ।" नौकर ने कहा—"कृपा कर मुझे बता तो दीजिये कि मामला क्या है। आपके बदले मैं खुशी से मर सकता हूँ। मैं आपको किसी प्रकार दुखी नहीं देख सकता।" तब काज़ी ने सारी कठिनाई उसे समझा दी। नौकर बहुत छोटे दर्जे का आदमी था। उसकी कोई इज्जत न थी, जैसे गारा-ईंट ढोनेवालों की कोई बात

नहीं पूछता ; परन्तु पाजी था तो काज़ी का शिष्य और पूरा-पूरा समझदार। वह इन प्रश्नों के उत्तर जानता था। उसने कहा, "मैं चला जाऊँगा और उत्तर दे आऊँगा, पर आप मुझे एक आज्ञा-पत्र लिख दीजिएगा कि यदि मेरे उत्तर बादशाह को संतोष न दे सके तो मैं मरूँगा, न कि मेरा मालिक।" काज़ी इसी संकोच में पड़ा हुआ था, किन्तु उसी क्षण जब बादशाह का दूत काज़ी के पास पहुँचा तो काज़ी काँपने लगा और उसने नौकर को जाने की आज्ञा दे दी। पाजी ने अपने सर्वोत्तम वस्त्र, जो चिथड़े-चिथड़े थे, पहन लिये। वह एक वेदान्ती भाई था। भारतवर्ष में सदा से राजा लोग सच्चे साधुओं के पास आते रहते हैं और उनसे विद्या व ज्ञान प्राप्त करते हैं। पाजी, ज्ञानी नौकर, निर्भय होकर बादशाह के पास पहुँचा और बोला, "महाराज आप क्या पूछना चाहते हैं?"

बादशाह ने कहा, "क्या तुम प्रश्नों के उत्तर दे सकते हो, जो मैंने तुम्हारे मालिक से पूछे थे?" पाजी ने कहा, "मैं उन प्रश्नों के उत्तर तो दूँगा, किन्तु आपको जानना चाहिए कि जो उत्तर देता है वह गुरु के समान होता है और जो प्रश्न करता है वह शिष्य। एक सच्चा मुसलमान होने के नाते मैं आपसे आशा करता हूँ कि आप अपने पवित्र धर्म-ग्रन्थों (कुरान इत्यादि) के नियमों के अनुसार काम करेंगे। नियमानुसार मुझे सम्मान के स्थानपर बैठाइये और आप मुझसे कुछ नीचे के आसन पर बैठिये।"

यह सुन बादशाह ने उसे कुछ सुन्दर वस्त्र पहनने को दिये और अपने तख्त पर बैठा दिया, और स्वयं कुछ नीचे बैठा। फिर बादशाह ने कहा, "देखो, एक बात का ध्यान रखना, यदि आपके उत्तर मुझे सन्तुष्ट न कर सके तो मैं आपको मार डालूँगा।" पाजी ने कहा, "निस्सन्देह, यह तो पहले ही से निश्चित है।"

अब पहला प्रश्न जो बादशाह ने पूछा, यह था— "ईश्वर बैठता कहाँ है!" पाजी ने अक्षरशः उत्तर देना ठीक न समझा। वह बादशाह की समझ में न आता। अतः पाजी ने कहा, एक गाय मँगाओ।" गाय लाई गई। तब उसने पूछा, "क्या गाय में दूध है? बादशाह ने कहा, "हाँ, निस्सन्देह गाय में दूध है।" "दूध कहाँ रहता है।" बादशाह ने कहा, "थन में।" पाजी ने कहा- "यह ठीक नहीं, दूध तो गाय के सारे बदन में फैला रहता है। अच्छा, इस गाय को बाहर कीजिए और कुछ दूध मँगाइये।" दूध लाया गया। पाजी ने फिर पूछा "इसमें मक्खन कहाँ है? क्या मक्खन दूध में उपस्थित है?" बादशाह ने कहा, "हाँ अवश्य है।" पाजी ने प्रश्न किया, "कहाँ है? दूध में मक्खन किधर बैठा है?" बादशाह कुछ न बता सके। तब पाजी ने कहा, "यद्यपि आप यह नहीं बता सकते कि मक्खन कहाँ, रहता है, फिर भी यह विश्वास सबको रहता है कि इसमें मक्खन है अवश्य। वास्तव में मक्खन दूध में सर्वत्र व्यापक है, इसी प्रकार ईश्वर भी समस्त विश्व में व्यापक है, ठीक उसी प्रकार जैसे दूध में मक्खन हर

जगह है और दूध गाय में प्रत्येक स्थान पर है। दूध के लिए तुम गैया दुहते हो, इसी प्रकार ईश्वर को पाने के लिए अपने हृदय को दुहना चाहिए।" फिर पाजी ने पूछा, "बादशाह सलामत! क्या आपको प्रश्न का उत्तर मिल गया?" बादशाह ने कहा, "हाँ, ठीक है।" अब वे लोग, जो बादशाह से कहा करते थे कि ईश्वर सातवें या आठवें आकाश में रहता है, बादशाह की निगाहों में गिर गये। वे उसकी दृष्टि में नगण्य हो गये; क्योंकि उनकी बात ठीक न थी।

इसके बाद दूसरा प्रश्न आया, "ईश्वर किस ओर देखता है, उत्तर, दक्षिण, पूर्व या पश्चिम?" यह भी बड़ा विचित्र प्रश्न था, क्योंकि ये लोग ईश्वर को एक व्यक्ति के समान देखते थे। पाजी ने कहा, "बहुत अच्छा, एक दीपक लाइए।" एक मोमबत्ती लाई गई और जलाई गई। इस प्रयोग के द्वारा उसने दिखा दिया कि मोमबत्ती उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम की ओर नहीं किन्तु सब ओर एक समान देखती है। बादशाह को सन्तोष हो गया। इसी प्रकार ईश्वर तुम्हारे हृदय में एक ज्योति के समान विद्यमान है, जो चारों ओर प्रकाशवान् है।

तीसरा प्रश्न आया, "ईश्वर करता क्या है?" पाजी ने कहा, "बहुत अच्छा।" और बादशाह से कहा कि काज़ी को बुलवाइए। जब उसका मालिक काज़ी आया तो नौकर को बादशाह के तख्त पर बैठा देख बड़ा चकित हुआ। पाजी ने काज़ी से उस जगह बैठने को

कहा, जहाँ पाजो, उसका नौकर, पहले बैठता था और बादशाह को काज़ी की जगह पर बैठाया, और आप तो बादशाह के तख्त पर बैठा ही था। उसने कहा, "देखो, ईश्वर का यही काम है। यह हरएक को, हर वस्तु को चलाता रहता है। उसने पाजी को बादशाह, बादशाह को काज़ी और काज़ी को पाजी बनाया।" यही क्रम संसार में सदैव चलता रहता है। एक कुटुम्ब उन्नति पाता है और फिर अज्ञात हो जाता है। दूसरा उसकी जगह लेता है और कुछ काल बाद वह भी लुप्त। आज एक मनुष्य सम्मान पाता है, कल दूसरा उसका स्थान ग्रहण करता है; इसी प्रकार दिन-प्रति-दिन, वर्ष-प्रति-वर्ष परिवर्तन होता रहता है। बस, इस परिवर्तन का ही नाम संसार है, यहाँ अनादि काल से परिवर्तन हो रहा है। उस दिन से पाजी काज़ी बना दिया गया।

: १० :

महत् अहं

बिखरो ! बिखरो ! बिखरो !
शिलाखण्ड ! चरणों पर ओ सागर !
बिखरो ! बिखरो ! बिखरो !
अरे अनागत[१] जग इन चरणों पर
ओ सूर्यो-तूफानो ! ओ भूकम्पो युद्धो !
स्वागत अभिनन्दन, तुम करो यत्न,

[१] अद्भुत

मुझपर दो अपनी सब शक्ति लगा ।
भड़को, ओ टारपिडो सुन्दर, ओ मधुर खिलौनो फूटो !
टूटते हुए तारो ! मेरे तुम तीर, उड़ो !
ओ जलते अग्नि ! जला सकते तुम क्या मुझको,
तड़पती बिजलियो, मुझसे ही तुम ज्वलित हुई !
तुम ओ अंगार धार, खड्ग, तोप के गोलो !
मेरी यह शक्ति तुम्हें करती है भू-लुण्ठित !
मेरा तन मिटकर बन धूलि पवन में उड़ता,
पर असीम आवरण[1], मुझे वेष्टित[2] कर लेता,
फिर सबके श्रवण[3], श्रवण मेरे ही !
सबकी आँखें मेरी ही आँखें !
सबके कर ही मेरे कर, सबका मानस मेरा मानस !
मैंने मृत्यु का किया भक्षण, पी डाली सब भेदवृत्ति !
कितना बलदायक, सुमधुर है मेरा भोजन
अब न भय, न वेदना, मुझे न कष्ट है कोई !
अब सब आनन्द यहाँ धूप हो कि हो वर्षा !
सिहरा अज्ञान अन्धकार !
काँपा, दहला, फिर हो गया सदा को विनष्ट
मेरी तीव्रतम ज्योति ने उसे जला डाला,
मेरा आनन्द अनिर्वच[4], कितना मैं प्रसन्न !
नाचो ओ सूर्य-तारको, नाचो,
तीव्रतम प्रकाशों के ओ प्रकाश !
ओ सूर्यों के सूरज, नाचो मेरे भीतर !
ओ खगोल-पिण्डो, तुम मात्र भँवर और लहर !

---

[1] परदा, [2] लपेटना, [3] कान, [4] जिसका वर्णन न हो सके ।

पर मेरे भीतर लहराते विस्तृत सागर,
थर-थर उठते, गिरते लहरें ले, नर्तनिरत
घूमो तुम लोको !
धुरी लग्न ओ ग्रह-पिण्डो !
नाचो, मेरे जीवन के प्रकाश में आकर !
मुझको सब निज अणु-अणु अंग-अंग दिखला दो ।

: ११ :

हृदय की रचना

बायरन[1] के भीतर स्वतन्त्रता की भावना काम करती थी । जब वह विश्वविद्यालय में पढ़ता था तो जिस कक्षा में वह था, उस कक्षा की एक परीक्षा में निम्नलिखित विषय पर निबन्ध लिखने को कहा गया—"ईसा ने किस विचित्र योग-शक्ति से किसी विवाह के प्रीतिभोज पर पानी को मदिरा में बदल दिया ?" नियत समय में कुछ विद्यार्थियों ने लम्बे-चौड़े किस्से लिख डाले कि "मेहमान कैसे-कैसे वस्त्र पहने हुए थे," "भोजन किस भांति परोसा गया था". "ईसा कैसे दिखाई देते थे" इत्यादि । इस प्रकार वे उस निबन्ध को विस्तार देते गये; पर इस अवधि में बायरन कभी छत की ओर देखता रहा, कभी अन्य विद्यार्थियों के मुखों की ओर ताकता और कभी-कभी उसकी सीटी बजाने की इच्छा हो उठती । जब समय समाप्त हुआ और अध्यापक निबन्ध को

[1] अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध कवि (सन् १७८८-१८२४)

कापियां जमा करने आया, तो बायरन से उसने कटाक्ष किया—"तुम तो थक गये होगे, लिखने में सचमुच बड़ा परिश्रम हुआ है।" वह जानता था कि बायरन की कापी कोरी होगी; किन्तु बायरन ने कहा, "एक मिनट ठहर जाइए", और चटपट एक पंक्ति घसीटकर कापी अध्यापक को दे दी। प्रायः तीन सप्ताह पश्चात् परिणाम घोषित हुआ और कुछ निबन्धों की बड़ी प्रशंसा की गई; किन्तु यह जानकर सब आश्चर्य में डूब गए कि बायरन को प्रथम पुरस्कार मिला। विद्यार्थियों को बायरन के निबन्ध की श्रेष्ठता का विश्वास दिलाने के लिए अध्यापक ने उसे कक्षा में पढ़ सुनाया। एक पंक्ति का निबन्ध था—"जल ने अपने स्वामी को देखा तो लज्जा के मारे उसके मुख पर लाली दौड़ गई।" कितना स्वाभाविक ढंग था। यह छोटी-सी पंक्ति हृदय से निकली थी और सभी स्वाभाविक रचनाओं की भांति थी सर्वांग सुन्दर, स्वतन्त्र और कवित्वमय ! वह हृदय की रचना थी।

: १२ :

आध्यात्मिक शक्ति

एक भारतीय रानी की कथा है, जिसने अपने सब बच्चों को पूर्ण बनाने की प्रतिज्ञा की थी। उसने अपने सब बच्चों को आवागमन से छुटा देने का संकल्प किया। अपने बच्चों को आवागमन से मुक्त कर

देने का भारतीय माताओं का एकमात्र लक्ष्य और उद्देश्य होता है। आत्मज्ञानी पुरुष मुक्त-आत्मा होता है और उसका पुनर्जन्म नहीं होता। उस माता ने अपने समस्त राज्य को आत्मानुभवियों और ईश्वर-भक्तों से परिपूर्ण करा देने की भी शपथ ली थी।

उसने अपने सब प्रजा-जनों को भी नर-नारायण बनाना चाहा। यह संकल्प केवल एक माता का था और उसे सफलता हुई। उसके पुत्र नर-तनधारी नारायण हुए। वे कृष्ण हुए, बुद्ध हुए, तत्वज्ञानी हुए, त्यागी हुए और सम्पूर्ण समाज के शासक हुए। उसकी सारी प्रजा बन्धन-मुक्त हो गई। यह एक नारी ने कर दिखाया। उसका तरीका क्या था? जब उसके बच्चे बिल्कुल छोटे थे तभी से वह उन्हें लोरी गा-गाकर सुनाया करती थी। जब वह उन्हें दूध पिलाती थी तब लोरी सुनाती थी। अपने दूध के साथ वह उनमें ब्रह्मज्ञान भरा करती थी। पालने को झुलाते समय जब वह उन्हें सुलाने के गीत गाया करती थी तब वेदान्त का दूध उनमें भर दिया करती थी।

(१)

सो जा बच्चे ! सो जा, सो जा मुन्ना ! सो जा।
सो जा लल्ला ! सो जा, सो जा, सो जा, सो जा।
सिसक चीख मत, रो न कभी तू,
कर अविघ्न[1] आराम सदा तू।

---

[1] बिना बाधा के

दूर फेंक सब भय-बाधाएँ,
गुण गंधर्व सभी तब गाएँ।
सुन्दरताई सम्पतियों का,
तथा नियामक[1] ऋद्धि-सिद्धि[2] का।
है निर्दोष आत्मा तेरा,
शासक उन्नायक सु-बड़ेरा[3]।
सो जा बच्चे! सो जा, सो जा मुन्ना! सो जा।

(२)

मृदु गुलाब, सित[4] मधुर ओस-कण,
महक, मधु, सुखद ताप, मृदु पवन।
मधुरालाप अति प्रिय तानें,
कान नयन अच्छा जो जानें।
सो तेरे स्वर्गीय भवन से,
आता है कल्याण भवन से।
शुद्ध, शुद्ध, तू निर्विकार है,
निष्कलंक तू आकार है।
सो जा बच्चे! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(३)

शत्रु, मीत[5] शंका नहिं कोई,
अमर! न छू सकता है कोई।
मीठो, प्रिय, मृदु, शांत अति कलित[6],
निद्रा से आत्मा परिपूरित।

---

[1]व्यवस्था करनेवाला, [2]समृद्धि और सफलता, जो गणेशजी की दासियाँ मानी जाती हैं, [3]महान [4]सफेद, [5]मित्र, [6]सुन्दर।

तू ही तारामय अम्बर को,
जटित तथा कमनीय शिखर को।
उठा रहा सिर पर ऐ प्यारे!
ओंकार के रूप दुलारे।
सो जा बच्चे? सो जा, सो जा लल्ला! सो जा!

(४)

सूर्य चन्द्र गेंदें क्रीड़ा की,
घर महराबें इन्द्रधनुष की।
राहें तब पय-सरिस उजेरी,
मेघ करें मिल बातें तेरी।
सकल भवन हैं गुड़ियाँ तेरी,
नाचतीं, गातीं, करतीं फेरी।
वे तेरी स्तुति करती हैं,
ओं ओं तत्सत करती हैं।
सो जा बच्चे! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा।

(५)

कुमुद कमल में झील सरोदधि,
दिखे मधुर क्या तव शायित छवि।
देश काल की गरम कम्बलें,
सुप्त बाहु से तव मुख खोलें।
करवट में दिखलाई दे तू,
बच्चे जैसा सोता है तू।
हँसते हुए नेत्रों वाले!
प्यारे सुत नटखट मतवाले!
सो जा बच्चे! सो जा, सो जा लल्ला! सो जा!

ऊँची कड़ी कूक कोयल की,
तेरी प्रिय गुड गुड सीटी।
तारे पवन विहंग पिडुकियाँ,
हैं सुखिलौने बाल-बालियाँ।
यह अपार संसार प्रसारा,
है कौतुकमय स्वप्न तिहारा।
यह सब तेरे भीतर ही है,
यद्यपि दिखते बाहर ही हैं।
सो जा बच्चा ! सो जा, सो जा लल्ला ! सो जा।

(७)

ऐ जाग्रत-घर निद्रा-सुख के,
सक्रिय स्रोत गंभीर बुद्धि के !
जीवन और कर्म के कैसे,
शाँति-भरे चश्मे के ऐसे !
विषम विरोध और संघर्षण,
के ये सुन्दर प्यारे सुन्दर कारण !
सीमाकारी अन्धकार के,
अन्तिम नमस्कार तू करले।
सो जा मुन्ना, सो जा, सो जा लल्ला ! सो जा।

(८)

सुन्दर मनहर चीजें सारी,
उड़ते हुए परों की न्यारी।

हैं खुशामदी ध्वनियाँ जारी,

हे आनन्दस्वरूप सम्राट् गरुड़जी ।

तव पंखों की चलती छाया,

मोह युक्त सुन्दरता-माया ।

आधी कभी प्रकट करती हैं,

अर्द्ध छिपाती घूँघट-इव हैं ।

इस घूँघट के ओढ़नवाले !

मधुर ओम् अति आनन्दवाले ।

तू सच्चा-स्वरूप है ओम्,

ओम् ! ओम् ! तत्सत तू ओम् ।

सो जा भैया ! सो जा, सो जा बेबी ! सो जा ।

सो जा लल्ला ! सो जा, सो जा, सो जा, सो जा !

वह रानी अपने सातों लड़कों को जिस तरह की लोरियाँ सुनाती थी, उनका यह एक नमूना है। जब लड़कों ने घर छोड़ा तब वे ईश्वर-भाव से परिपूर्ण हुए विचरने लगे। उनके द्वारा वेदान्त का प्रसार हुआ। आठवें लड़के की शिक्षा ठीक ऐसी नहीं हुई थी; क्योंकि पिता नहीं चाहता था कि वह राज-पाट छोड़कर चला जाय। पिता ने उसे पूर्ण स्वतन्त्र मनुष्य बनाना नहीं चाहा। इसलिए माता ने इस लड़के को ऊपर की लोरी गाकर नहीं सुनाई; परन्तु किसी-न-किसी तरह उसे अपनी इस प्रतिज्ञा की रक्षा करनी थी कि लड़के को

इस जीवन में किसी तरह की दुःख-पीड़ा भोगनी न पड़े। चूँकि आठवें लड़के से राज-पाट छुटाना मंजूर नहीं था, इसलिए इसकी शिक्षा अन्य सातों की-सी नहीं हुई थी। आठवाँ लड़का एक धाय को सौंप दिया गया; किन्तु जब माता मरने लगी तो यह लड़का उसके पास लाया गया और माता ने उक्त ज्ञान (गीत वा लोरी) लड़के को दे दिया। गीत कागज पर लिखा था और किसी ऐसी बहुमूल्य वस्तु में लपेटा हुआ था कि जिस पर रत्न लगे हुए थे। माता ने इसको लड़के की भुजा में बाँध दिया और इस तावीज़ को बहुत ही पवित्र रखने को कह दिया। माता ने लड़के से कहा, "इसके भीतर के कागज को पढ़ना, उस पर विचार करना, मनन करना! वह तुम्हें स्वतन्त्र बना देगा, तुम्हारे सब दुःख हर लेगा।" उसने लड़के से कहा, "घोर संकट पड़े बिना इस तावीज़ को न खोलना!" माता-पिता दोनों मर गए। लड़का राजा हुआ और बहुत दिनों तक राज्य करता रहा।

एक दिन लड़के के बड़े भाई अपने पिता की राजधानी में आये। उन्होंने अपने छोटे भाई से, जिसका नाम अलर्क था, कहला भेजा, "सिंहासन खाली कर दो, क्योंकि बड़े भाई होने के कारण सिंहासन के हम न्याय-संगत उत्तराधिकारी हैं।" जब अलर्क को बड़े भाई ने यह धमकी दी तो वह भय से काँपने लगा। वह डर गया और उसे कोई उपाय न सूझा। अपना सब गौरव और वैभव छिन जाने की आशंका से वह रोने लगा।

रात को सोने के समय उसका ध्यान अपनी बाँह के तावीज़ पर गया और माता के अन्तिम शब्द उसके मन में बिजली की तरह कौंध गए। उसने यन्त्र को खोला और कागज को पढ़ा। अश्रुपूर्ण नेत्रों से उसने पढ़ा, 'तू शुद्ध स्वरूप है, तू निर्विकार है, तू सम्पूर्ण ज्ञान है, सम्पूर्ण शक्ति है, तू सम्पूर्ण शक्ति का नियामक है, तू संसार में सम्पूर्ण सौन्दर्य और आनन्द का दाता और प्रतिपालक है। अपने को शरीर मत समझ, सांसारिक पदार्थों पर भरोसा मत कर, उनसे ऊपर हो। इसपर मनन कर, इसपर विचार कर। शत्रु और मित्र तू ही है।'' पुत्र (अलर्क) ने इस उपदेश का पूरा-पूरा अनुभव किया। उसकी चिन्ता और उसका भय जाता रहा। हर्ष और आनन्द की प्राप्ति हुई। उसने बार-बार इसे गाया। गीत के अर्थ और गुण तथा माता की सदिच्छाओं के कारण से वह पुनः संजीवित हुआ और अपने-आप में आया। सब भय और चिन्ता भाग गई, शोक सब जाता रहा। सब संसारिक आशाओं, लौकिक इच्छाओं और तुच्छ कामनाओं को उसने अन्तिम नमस्कार कर दिया। उसे इसका ऐसा पूर्णानुभव हो गया, पवित्रता और बल से वह इतना परिपूर्ण हो गया कि उससे वे (पवित्रता और बल) उमड़े पड़ते थे। वह सोना भूल गया और कपड़े पहनकर जिस स्थान पर उसके भाई थे, वहाँ पहुँचा। उनसे उसने कहा, "आइये आइये और मेरा यह भार उतार दीजिये। सिर की पीड़ा का कारण यह राजमुकुट, आप ले लीजिये। मुझे इससे मुक्त कर

दीजिये। मैं जानता हूँ कि जो राजसिंहासन पर बैठने और राज्य पर शासन करने के अभिलाषी हैं, वे सब शरीर मैं ही हूँ। मैं तुम हूँ और तुम और हम एक ही हैं, हममें कोई भेद नहीं है।" भाइयों ने जब उसके मुख-मंडल पर इस पवित्रता को देखा तो वे प्रसन्नता से खिल उठे। उन्होंने कहा, "हम सिंहासन लेने नहीं आये थे, क्योंकि हम तो सम्पूर्ण संसार के शासक हैं। हम तो केवल तेरा वह सच्चा जन्माधिकार तुझे देने आये थे, जो इस शरीर के भीतर है।" उन्होंने कहा, "भाई, तू इंद्रियों का दास नहीं है। भाई, तू केवल इस लोक का ही राजा नहीं है; बल्कि तू तो सूर्य, नक्षत्र-मंडल, अखिल विश्व और समस्त लोकों का राजा तथा स्वामी है। भैया, आ, अनुभव कर तू अनन्त है, निर्विकार स्वरूप है, सूर्यों का सूर्य और प्रकाशों का प्रकाश है।" राजा ने इस सत्य का अनुभव किया और राज्य करता रहा; परन्तु अब राजकाज को वह नाट्यशाला में नाटक का अभिनय-मात्र समझता था। वह अपने को अभिनेता-मात्र समझता था। राजा स्वस्थ हो गया और फिर किसी बात से भी उसे शोक नहीं होता था। उसने शक्तिशाली राजा की तरह राज्य किया और जगत में अत्यन्त प्रबल राजा हुआ। सफलता उसे ढूँढ़ा करती थी।

: १३ :

प्रकृति-दर्शन

गंगोत्री, सितम्बर १९०१

पवित्र-सलिला गंगा राम का वियोग न सह सकी और अन्त में एक मास होते-ही-होते उसने फिर राम को अपने पास बुला ही लिया। यद्यपि राम की गंगा सब भाँति श्री, शक्ति और सम्पत्ति-सम्पन्ना है, फिर भी राम से मिलने पर वह अपने आनन्दाश्रुओं के वेग को किसी प्रकार न रोक सकी। गंगोत्री[1] पर प्यारी गंगा के तट के सौन्दर्य एवं विनोदशील चुहुल का वर्णन कौन कर सकता है! यहाँ उसके चिर सहचरों का निर्मल चरित्र हिमालय के धवल शिखरों और निष्पाप देवदार वृक्षों का चरित्र, किसके हृदय को आकर्षित न करेगा!

यमुनोत्री[2] की यात्रा के बाद गंगोत्री पहुँचने में यात्रियों को साधारणतः दस दिन से कम का समय नहीं लगता। केवल तीन ही दिन में राम यमुनोत्री छोड़कर गंगोत्री पर पहुँच गया। उसने एक ऐसे मार्ग को पकड़ा था, जिस पर नीचे मैदान के किसी निवासी के पैर शायद ही कभी पड़े हों। पर्वत के निवासी इस मार्ग को छाया-पथ के नाम से पुकारते हैं। लगातार तीन रातें राम ने जंगल की एकान्त गुफाओं में काटीं। मार्ग में न

---

[1] उत्तराखण्ड (हिमालय) में वह स्थान, जहाँ से गंगा नदी की एक धारा भागीरथी निकली है।

[2] उत्तराखण्ड (हिमालय) में वह स्थान, जहाँ से यमुना नदी निकलती है।

कोई बस्ती और न कोई झोपड़ी दृष्टिगोचर हुई। दो पैरोंवाला भी इस यात्रा में कहीं कोई न दिखाई दिया।

छायापथ यह इसलिए कहलाता है कि प्रायः वर्ष भर इसपर घनी छाया रहती है। किसकी ? तुम सोचते होगे कि पेड़ों की ? नहीं, इस पथ का अधिकांश भाग बादलों से घिरा रहता है। यमुनोत्री और गंगोत्री के समीपवर्ती गाँवों के गड़रिये अपनी भेड़ों को चराते हुए वर्ष के दो-तीन मास हर वर्ष इन्हीं जंगलों में बिताते हैं। वे प्रायः दो हिम से ढँके हुए शिखरों—बन्दर पूँछ और हनुमान मुख[1] के समीप मिलते हैं। इस सारे पथ में फूलों की ऐसी अन्धाधुन्ध बाढ़ रहती है कि सारा मार्ग सुनहले फर्श से ढका मालूम होता है। पीले, नीले और गुलाबी फूल तो रंग-बिरंगे ढेर-के-ढेर चारों ओर फैले रहते हैं। ढेर-के-ढेर नरगिस, गुलगुल, धूप, अतिशय प्यारे रंगोंवाली मिमरी, केशर, इत्रस और अत्यन्त मनोहर सुगन्ध देनेवाले तरह-तरह के अनेक फूल, भेड़गट्टा, अपूर्व ब्रह्मकमल आदि के अनेक पौधे वहाँ पाये जाते हैं, जिससे ये पर्वत ऐसे सुरम्य विहार बन जाते हैं कि जहाँ पृथ्वी और आकाश का स्वामी भी रहने की ईर्ष्या कर सकता है।

कहीं-कही पर तो हवा के झोंकों पर सुगन्ध का ऐसा तूफान उठता है कि राम का हृदय मधुर संगीत की भाँति नाच उठता है। वायु पर सवार सुगन्धि का यह विशाल सरोवर—एकदम मधुर और एकदम कोमल—इन दीर्घाकार पर्वतों की चोटियों पर सुन्दर खेत ऐसे

---

[1] हिमालय की दो चोटियाँ

सुशोभित रहते हैं, जैसे बेल-बूटेदार कालीन बिछे हों। इनपर देवतागण या तो भोजन करने उतरते होंगे अथवा नृत्य-उत्सव के लिए। कल-कल ध्वनिवाले निर्झर और नुकीले पहाड़ों से गरजनेवाले नद यत्र-तत्र इस अद्भुत दृश्य की शोभा बढ़ाते रहते हैं। किसी-किसी चोटी पर मानो दृष्टि के सारे बन्धन कट जाते हैं। चाहे जिस ओर दृष्टि दौड़ाइये, कहीं कोई रुकावट नहीं, न कोई पहाड़ी और न कोई असन्तुष्ट बादल। उन्मुक्त होकर चाहे जहाँ विचरो। कोई-कोई उच्च शिखर तो मानो आकाश में छेद करने की स्पर्द्धा-सी करते हैं। वे अपनी उड़ान में रुकना जानते ही नहीं, ऊँचे उठते-उठते मानो सर्वोच्च आकाश से एक हो रहे हैं।

राम का वर्तमान निवास पर्वतीय रंग-मंच पर एक छोटी सुरम्य झोपड़ी में है। चारों ओर हरियाली का फर्श बिछा हुआ है। इस एकान्त प्राकृतिक उद्यान में गंगा की शोभा देखते ही बनती है। गौरैया जैसी अनेक प्रकार की चिड़ियाँ यहाँ रात-दिन चहचहाती रहती हैं। जलवायु बड़ा उत्साह बढ़ानेवाला है। गंगा की कल-कल और पक्षियों का कलरव दोनों मिलकर स्वर्गीय उत्सव का दृश्य उपस्थित करते हैं। यहाँ गंगा की घाटी काफी चौड़ी है; किन्तु इस लम्बे-चौड़े मैदान में भी गंगा का प्रवाह बहुत तेज़ है। फिर भी राम अनेक बार उसके आर-पार जाता-आता रहता है। कभी-कभी केदारनाथ और बदरीनाथ[1] भी राम बादशाह को बड़े प्रेम से आने

---

[1] उत्तराखण्ड के दो प्रसिद्ध तीर्थ, केदारनाथ में शिव की तथा बदरीनाथ में विष्णु (नारायण) की पूजा होती है।

के लिए निमन्त्रण भेजते हैं, किन्तु ज्योंही प्यारी गंगा को राम के वियोग का संकेत मिलता है, त्योंही वह उदास और दुःखी होने लगती है। राम भी उसे दुःखी करना पसंद नहीं करता। उसकी उदासी किसे अच्छी लगेगी !

... ...

यमुनोत्री की गुफा में रहते समय राम का दैनिक भोजन था मर्चा[1] और आलू और वह भी चौबीस घंटों में केवल एक बार। फलतः कुछ दिनों में मन्दाग्नि हो गई। इसी रुग्णावस्था के चौथे दिन बड़े तड़के गरम चश्मे में नहाने के बाद राम सुमेरु[2] यात्रा के लिए निकल पड़ा, केवल एक कौपीन पहनकर—न कोई जूता, न कोई पगड़ी और न कोई छाता। पाँच हृष्ट-पुष्ट पहाड़ी गरम कपड़े पहनकर राम के साथ हुए।

सबसे पहले हमें शिशु के जैसे रूपवाली यमुना तीन-चार स्थलों पर पार करनी पड़ी। कुछ दूरी पर यमुना घाटी का मार्ग एक विशालकाय हिम-शिलाखण्ड से अवरुद्ध था—४०-५० गज ऊँचा और डेढ़ फर्लांग के लगभग लम्बा। एकदम सीधे दो पर्वत-शिखर दो दीवारों की भाँति सगर्व दोनों ओर खड़े हुए थे। जैसे सचमुच राम बादशाह का पथ रोकने के लिए उन्होंने कोई षड्यंत्र रचा हो ! राम कब परवा करता है ! सुदृढ़ अचल संकल्प शक्ति के आगे बाधाएँ ऐसे भागती हैं, जैसे आँधी के आगे बादल। हम लोगों ने पर्वत को

१ एक प्रकार का पहाड़ी अन्न।

२ हिमालय का वह भाग जहाँ गंगोत्री आदि तीर्थ हैं।

पश्चिमवाली दीवार पर चढ़ना आरम्भ किया। कभी-कभी हमें पैर जमाने के लिए एक इंच भी भूमि नहीं मिलती थी। केवल एक ओर हाथों से सुगन्धित किन्तु कंटीली गुलाब की झाड़ियों को पकड़कर और दूसरी ओर पर्वतों को चा नामक कोमल घास के नन्हे-नन्हे डंठलों में पैरों की उँगलियाँ गड़ाकर हम बदन को सँभाले रहते थे। किसी भी क्षण हम मृत्यु के मुख में गिर सकते थे। यमुना की घाटी में बर्फ के ठंडे बिस्तरों से भरा हुआ एक गहरा खड्डा हमारे स्वागत के लिए मुंह फैलाये खड़ा था। ज़रा भी जिसका पैर काँपता, वह आराम से सुशीतल हिम-समाधि में जाकर सो जाता। निचाई से आनेवाली यमुना की धीमी-धीमी मरमर-ध्वनि अब भी हमारे कानों पड़ती थी, जैसे कब्रिस्तान में मृत्युकालीन बाजा बजता हो। इस तरह हम लोग पूरे पौने घंटे तक बराबर मानो मृत्यु के मुख में चलते रहे। सचमुच विचित्र परिस्थिति थी! एक ओर मृत्यु हमारे लिए मुँह बाये खड़ी थी और दूसरी ओर ऐसी भीनी-भीनी सुगंधवाली शीतल और मधुर वायु के झोंके आ रहे थे, जिनसे चित्त एकदम खिल उठता! इस भयानक और दुरूह चढ़ाई के बाद हम लोगों ने उस भयंकर रुकावट को पार कर लिया। वह भयंकर हिम-शिलाखंड और यमुना पीछे छूट गई। हमारी टुकड़ी पुनः एक सीधे खड़े पर्वत पर चढ़ने लगी; किन्तु कोई रास्ता, कोई पगडंडी, कुछ भी दिखाई नहीं देता था। एक बड़ा भारी जंगल था, जिसमें वृक्षों की टहनियाँ भी ठीक समझ में न आती थीं।

राम का शरीर कई जगह छिल गया। ओक और बिर्च देवदार और चीड़ के इस गम्भीर वन में एक घंटे तक संघर्ष करने के बाद अन्त में हम लोग एक ऐसी खुली जगह में पहुँचे, जहाँ वनस्पति अपेक्षाकृत बहुत छोटी थी। वायुमंडल में विद्युत जैसी लहर फैल रही थी, सुगंधि के फव्वारे छूट रहे थे, इस चढ़ाई ने पहाड़ियों को बेदम कर दिया, पर इस व्यायाम से राम का चित्त प्रफुल्लित हो उठा। यहाँ की धरती अधिकतर चिकनी थी। फिर भी चारों ओर एक-से-एक मनोहर दृश्य, सुन्दरतम फूलों का कानन और हरियाली की बहार ने हमारी इस कठोर यात्रा के श्रम को हमारी चित्तवृत्ति से सदा ही दूर रखा।

... ...

और उन दिनों बीमार रहनेवाला राम! वह तो और बीमार हो गया होगा! नहीं, उस दिन बिल्कुल चंगा रहा। न कोई रोग, न कोई थकावट, शिकायत का नामोनिशान नहीं। कोई भी पहाड़ी उससे आगे न निकल सका। हम लोग ऊपर-ऊपर चढ़ते ही गये, जबकि हरएक को भूख लग आई। इस समय हम उस प्रदेश में पहुँचे हुए थे, जहाँ कभी पानी नहीं बरसता, गिरती है केवल बर्फ; अत्यन्त सौंदर्यमयी उदारता के साथ!

यहाँ इन नंगे और वीरान शिखरों पर हरियाली का भी चिह्न नहीं दिखलाई देता। हमारे आगमन के पहले ही हिमपात हुआ था।

राम के स्वागत के लिए साथियों ने एक पत्थर

की बड़ी चट्टान पर कालीन की भाँति एक लाल कम्बल बिछा दिया और पिछली रात जो आलू उबाले गये थे, भोजन के लिए परोस दिये। साथियों ने भी वही सीधा-सादा बासी भोजन बड़े अनुग्रह के साथ खाया।

भोजन करने के बाद हम लोग तुरन्त ही उठ खड़े हुए! दृढ़ता के साथ हम लोग आगे बढ़े, किन्तु ऊपर की चढ़ाई कठिन थी। एक नवयुवक थककर गिर पड़ा। उसके फेफड़ों और हाथ-पैरों ने आगे चढ़ने से इन्कार कर दिया। उसका सिर चक्कर खाने लगा। उस समय उसे वहीं छोड़ दिया गया। थोड़ी दूर चलने के बाद एक दूसरा साथी बेहोश होकर गिर पड़ा। उसने कहा—"मेरा सिर घूम रहा है।" वह भी उस समय वहीं छोड़ दिया गया। शेष टुकड़ी आगे बढ़ी; किन्तु थोड़ी देर बाद तीसरा साथी भी गिरा। उसकी नाक फूट गई, रक्त बहने लगा। दो साथियों को लेकर राम ने आगे का मार्ग लिया।

तीन अत्यन्त सुन्दर बरार (पहाड़ी हिरन) हवा की तरह दौड़ते हुए निकल गए। चौथा साथी भी लड़खड़ाने लगा और अन्त में हिमाच्छादित शिला पर लेट गया। यहाँ कही तरल जल नहीं दिखाई देता; किन्तु शिलाओं के नीचे से, जहाँ वह आदमी लेटा था, गंभीर घर-घर की आवाज आती थी। एक ब्राह्मण इस समय भी राम के साथ था—वही लाल कम्बल, एक दूरबीन, एक हरा चश्मा और एक कुल्हाड़ी लिये हुए। यहाँ हवा बिल्कुल पतली है, जिससे साँस लेने में

बड़ी कठिनाई होती है। फिर भी आश्चर्य! दो गरुड़ हमारे सिरों के ऊपर उड़ते हुए निकल गए। अब, बहुत पुरानी, अत्यन्त प्राचीन कालीन गहरे काले रंग की बर्फ की एक ढलवां चढ़ाई थी। विकट काम था। साथी ने कुल्हाड़ी से उस रपटनेवाले बर्फ में कुछ गड्ढे बनाने चाहे, जिससे उनमें पैर जमाकर ऊपर चढ़ा जाय, किन्तु वह पुरातन हिमखण्ड इतना कड़ा था कि उस बेचारे की कुल्हाड़ी टूट गई। और ठीक उसी समय एक बर्फ के अन्धड़ ने आ घेरा। राम ने उस बेचारे दुखी हृदय को सान्त्वना देने की चेष्टा की। भगवान् कभी हम लोगों का अनिष्ट नहीं कर सकता। इस हिमवर्षा से हमारा मार्ग निस्संदेह सुगम हो जायगा। सचमुच हुआ भी यही। उस भयानक हिमपात से ऊपर चढ़ना कुछ आसान हो गया। नुकीली पर्वतीय छड़ियों की सहायता से हम लोग उस ढाल के ऊपर चढ़ गए और हमारे सामने साफ चौरस, चमचमाती हुई बर्फ का मीलों विशाल लम्बा-चौड़ा मैदान फैला हुआ था। श्वेत चांदी जैसी आभा से जगमग फर्श! चारों ओर से एकदम समतल! हर्ष! परमहर्ष! जाज्वल्यमान क्षीरसागर, चमकदार, परमोत्तम, विचित्र, विचित्र से विचित्र! राम के हर्ष का वारापार न था। उसने अपनी पूरी चाल से दौड़ना शुरू किया, कंधों पर लाल कम्बल डालकर और केनवस के जूते पहनकर ऐसी तेजी से दौड़ा, जैसा कभी न दौड़ा होगा।

इस समय राम बिल्कुल अकेला था। एक भी साथी

नहीं--आत्मा का हंस भी तो अन्त में अकेला ही उड़ता है !

लगभग तीन मील तक राम दौड़ता चला गया। कभी-कभी टांगें बर्फ में धंस जाती थीं और निकलती थीं बड़ी कठिनाई से। अब एक हिमानी ढेर पर लाल कम्बल बिछा दिया और बैठ गया। राम एकदम अकेला संसार के गुलगपाड़े और झंझटों से एकदम ऊपर ! समाज की तृष्णा और ज्वाला से एकदम परे ! नीरवता की चरम सीमा, शान्ति का साम्राज्य ! शक्ति का अतुल विस्तार ! शब्द का नामोनिशान नहीं है, केवल आनन्द घनघोर ! धन्य, धन्य, उस गम्भीर एकान्त को सहस्र बार धन्य !

बादलों का घूँघट भी यहाँ पतला पड़ जाता है और उस पतले परदे से होकर सूर्य की किरणें छन करके फर्श पर ऐसे गिरना शुरू होती हैं कि बात-की-बात में उस शुभ्र रजत हिम को चमकते हुए स्वर्ण में परिणत कर देती हैं। कितना उपयुक्त नामकरण हुआ है इस स्थान का, सुमेरु पर्वत—सोने का पहाड़ !

क्या किसी चमक से चमकदार हीरे की प्रभा, सुन्दर-से-सुन्दर राजप्रासाद की कला—इस सुमेरु की अतुलनीय मनोहरता और सौन्दर्य की तुलना में एक क्षण के लिए भी टिक सकती है ? नहीं-नहीं ! अभी और ऐसे असंख्य सुमेरु तुम्हें अपने ही भीतर मिलगे; जब तुम एक बार भी अपनी वास्तविक आत्मा का साक्षात् कर लोगे। सारी सृष्टि "मिट्टी के ढेले से लेकर बादल तक शस्य-श्यामला भूमि से लेकर नीलाम्बर तक और उस सृष्टि के भीतर रहनेवाले सभी सजीव प्राणी—चीटी

से लेकर आकाश में उड़नेवाले गरुड़ तक तुम्हारे स्वागत के लिए उठ खड़े होंगे।" कोई देवता भी तुम्हारी अवज्ञा का साहस नहीं कर सकता।

: १४ :

मनुष्य की इकाई

जो ऑक्सीजन तुम साँस द्वारा भीतर खींचते हो और जो कार्बन डायोऑक्साइड में बदल जाता है वह पौधों द्वारा छोड़ा हुआ था। वही ऑक्सीजन तुम्हारे भाइयों के फेफड़ों में जाता है। वही ऑक्सीजन जो इस समय तुम्हारे शरीर में है वही फिर तुम्हारे भाई के शरीर में भी जाता है। तुम सब-के-सब एक ही वायु साँस में लेते हो। ज़रा महसूस तो करो कि तुम सब-के-सब एक ही हवा में साँस लेते हो, तुम्हारी साँसों के द्वारा तुम्हारे सब शरीर एक हैं, उसी प्रकार जैसे तुम एक ही पृथ्वी पर, एक ही सूर्य और चंद्रमा के नीचे रहते हो और एक ही वायुमण्डल तुम्हारे चारों ओर है। तुम फल, फूल, शाक-भाजी, अन्न खाते हो। उनके खाने से तुम्हारे शरीर की रचना होती है। मल-मूत्र के रूप में वही बाहर निकल जाते हैं, और अपने इस त्यागे रूप में वे वनस्पतियों और फलों में प्रवेश करेंगे। वे उन रूपों में पुनः प्रकट होते हैं। वही पदार्थ, जो तुम्हारे शरीरों से बाहर निकला था, जब शाक-भाजियों और फलों के रूप में पुनः प्रकट होता है, तब फिर तुम्हारे भाइयों द्वारा ग्रहण किया जाता है, दूसरे लोगों के शरीरों

में प्रवेश करता है । इस प्रकार हम देखते हैं कि जो पदार्थ एक बार तुम्हारा था, वही तुरन्त दूसरे का हो जाता है । यदि हम सूक्ष्म-दर्शक-यंत्र से अपनी खाल की ओर देखें तो हम अपने शरीरों से छोटे जानदार परमाणु बाहर निकलते, बहुत ही छोटे जीवित जर्रे अपनी देहों से बाहर आते देखेंगे । वे केवल बाहर ही नहीं निकल रहे हैं, किन्तु वैसे ही परमाणु हमारे शरीर में जा भी रहे हैं । कुछ परमाणु शरीरों से बाहर आ रहे हैं और कुछ शरीरों में प्रवेश कर रहे हैं ।

इस दुनिया में इसी प्रकार निरंतर अदल-बदल हो रहा है । जानदार जर्रे, जो अब तुम्हारी देह से बाहर हो रहे हैं, वे इस वायुमण्डल में फैल रहे हैं और वे ही सजीव परमाणु, जो अबतक तुम्हारे थे, बिना बिलम्ब, तुरन्त तुम्हारे अन्य संगी-साथियों के हो जाते हैं । पदार्थ-विद्या असंदिग्ध रूप से यह प्रतिपादित करती है कि तुम्हारे भौतिक शरीर सब एक हैं । तुम शायद इसपर विश्वास न करोगे । यह कैसे सम्भव हो सकता है कि सजीव, अति सूक्ष्म परमाणु मेरे मित्रों के शरीरों से निकलकर मेरी देह में प्रवेश करते हैं और ऐसे ही परमाणु, जो मेरे शरीर से बाहर निकलते हैं, वे मेरे मित्रों के शरीर में चिपटते हैं ? यह कैसे सम्भव है ? आओ, जाँचें ।

गंध का कारण क्या है ? आप जानते हैं कि जो वस्तुएं हम सूँघते हैं, उनसे बाहर निकलनेवाले छोटे सजीव परमाणु ही गन्ध का कारण हैं । फूल के छोटे जानदार जर्रे बाहर निकलते हैं, इसीलिए

वे सुगंधित हैं। यह एक तथ्य है, जिसे पदार्थ-विद्या ने सिद्ध कर दिया है। यहाँ तुम्हारे बहुत-से शरीर हम देखते हैं। क्या उनसे गंध नहीं आती ? तुम्हारी घ्राणेन्द्रिय इतनी तीव्र नहीं है या यों कहिये कि इस प्रकार की अथवा इस सामर्थ्य की नहीं है कि इस गंध को ग्रहण कर सके। तुम्हारे शरीर गंधवान् हैं। कभी-कभी तुम्हें अपने शरीरों की गंध जान भी पड़ती है। कुत्ते सूंघकर तुम्हें ढूंढ़ लेते हैं। यदि तुम्हारी देहों से गंध न निकलती हो तो कुत्ते तुम्हें सूंघकर कैसे ढूंढ़ लेते ?

तुम्हारे शरीरों से निकलनेवाली यह गध सिद्ध करती है कि छोटे, सजीव परमाणु तुम्हारे शरीर को छोड़कर बाहर निकल रहे हैं। छोटे सजीव परमाणु तुम्हारी देहों से बाहर जाते हैं और दूसरों की देहों से निकलकर तुम्हारी देहों में घुसते हैं। इस प्रकार तुम सब एक हो। अरे, हम सब तो एक ही (विराट्) देह रखते हैं। उस गंध का भान करो। इस अर्थ में हम सब एक ही भौतिक शरीर रखते हैं। एक मनुष्य बीमार है। तुम उसके पास जाते हो और उस कमरे तक से उसकी बीमारी की गंध आती है। एक मनुष्य किसी संक्रामक रोग से बीमार है—हैजा, चेचक या प्लेग से। दूसरे लोगों को बीमारी की छूत कैसे ग्रस लेती है ? एकमात्र कारण यही है कि जो जर्रे बीमार की देह से निकल रहे हैं, वे तुम्हारे शरीर पर बैठ जाते हैं। इससे क्या यह नहीं प्रकट होता कि रोगी की देह से जो जर्रे बाहर आते हैं, वे हमारी देहों में चिपट जाते

हैं ? इसी तरह महामारी हमें पकड़ती है और हम अपने को बीमार अनुभव करते हैं । एक मनुष्य को जुकाम हो जाता है । उसके साथ रहनेवाले दूसरे व्यक्ति को, यदि वह बहुत कोमल स्वभाव का मनुष्य है तो, जुकाम हो जायगा । एक मनुष्य यक्ष्मा से पीड़ित है । दूसरे को यह रोग लग जाता है ।

यह कैसे हो सकता है, यदि सजीव परमाणु, जो तुम्हारे भाई का शरीर बनाते हैं, उसके शरीर से बाहर न निकलते और तुम्हारे शरीर न बनाते ? इससे स्पष्ट होता है कि तुम सब एक हो । हमारे स्थूल शरीर भी एक हैं, आत्मा का तो कहना ही क्या है ! राम इससे एक विलक्षण परिणाम पर पहुँचा है । यदि एक मनुष्य बीमार पड़ता है तो उसकी बीमारी की मुख्य सूचना क्या है ? उस संबन्ध में खास जिम्मेदारी क्या है ? वह रोगी है । वह स्वयं रोग भुगत रहा है, यह सत्य है । क्यों ? अपनी अज्ञानता के कारण । पर वह हमारी बीमारी भी लाता है । वह यद्यपि स्वयं पीड़ा पा रहा है, तथापि अपनी इस बीमारी के लिए वह सारी दुनिया के प्रति उत्तरदायी है । वह रोगी है और अपने रुग्ण शरीर के द्वारा रोग के कीटाणु बिना जाने फैला रहा है । मुझे बीमार न पड़ना चाहिए, केवल इसलिए नहीं कि मुझे पीड़ा होगी, किंतु इसलिए कि इस शरीर की बीमारी सारे संसार की बीमारी की जिम्मेदार है । तुम्हें बीमार होने का कोई हक नहीं है । अपनी बीमारी के कारण तुम सारी दुनिया के प्रति जवाब देह

हो। तुम्हारा रोगी शरीर सम्पूर्ण संसार को बीमार बना रहा है। रोग पैदा करनेवाले रोगाणुओं की सृष्टि कर रहा है। इस प्रकार हरेक को खूब सावधान रहना चाहिए। बीमारी केवल शरीर की ही नहीं है, अपितु आचरण की बीमारी भी है। तब तो तुम्हें इस बात की पूरी चौकसी रखनी चाहिए कि तुम्हारे शरीर बलिष्ठ और चंगे रहें। तुम जब कुछ खा-पी रहे हो तब सावधान रहो--अपने व्यक्तिगत शारीरिक आराम के लिए नहीं, बल्कि सारे जगत् के हित के लिए अति अधिक न खाओ, अति अधिक न पियो और खूब सचेत रहो।

अच्छा, फिर जो लोग स्वस्थ हैं, उनका रोगियों के प्रति क्या कर्तव्य है? जो स्वस्थ हैं, उन्हें रोगियों की सेवा करनी चाहिए। यह सेवा व्यक्तिगत रूप से उनपर कृपा या अनुग्रह के लिए नहीं होनी चाहिए, वरन् समग्र संसार के लिए, सारे संसार की भलाई के लिए मानव-समाज और सत्य के नाम पर, सार्वभौम भ्रातृत्व-के नाम पर, अपने निजी हित के नाम पर, तुम्हें रोगी की सेवा करना है। यह रोगी पर दया नहीं है, रोगी की सेवा करना और उसकी सहायता के लिए प्रयत्न करना, तुम्हारा मानव-समाज के प्रति कर्तव्य है। तब तुम देखोगे कि हमारे स्थूल शरीर, जो इतने विभिन्न जान पड़ते हैं, एक-दूसरे के लिए पीड़ा पा रहे हैं। मांस और रक्त के अति पवित्र बन्धनों से जुड़े हुए हम स्थूल लोक में भाई-भाई हैं। चिकित्सक सिद्ध करते हैं कि प्रति सात वर्ष के बाद मनुष्य का शरीर

बिल्कुल बदल जाता है, देह के प्रत्येक परमाणु के स्थान पर नये परमाणु आ जाते हैं। इसके यह भी मालूम होता है कि इन परमाणुओं को, जो प्रतिक्षण बदल रहे हैं, इन शरीरों को, जो निरन्तर प्रवाह में हैं, केवल अपना या तुम्हारा समझने का हमें कोई अधिकार नहीं है। यह शरीर मेरा और वह शरीर तेरा कहने का मुझे कोई हक नहीं है। यह देह क्षण-क्षण बदला करती है और वह देह जिसे मैं इस क्षण अपनी कहता हूँ, मेरी नहीं रहती। वह कौन-सी वस्तु है, जिसे मैं अपनी कह सकता हूँ? जो अब राम की देह है, वह सात वर्ष पूर्व किसी दूसरे की देह थी। चौदह वर्ष पहले जो राम की देह थी, वह अब किसी और की है। अनेक लोगों की। सो यह देह, जिसे तुम अपनी कह रहे हो, हरेक की और सबकी है। कृपया यह बात समझो। स्थूल लोक में भी सब एक हो।

: १५ :

वर्धनशील वेदान्त

नवीनता, प्रतिष्ठा या लोकप्रियता प्राप्त करने की इच्छा प्रायः लोगों को सत्य के मार्ग से विमुख रखती है। इस प्रकार की इच्छा को एक ओर छोड़कर और मस्तिष्क को साम्य-अवस्था में रखकर—अर्थात् न उदासी में निराश होकर और न आत्म-प्रशंसा के बादलों में उड़कर—यदि हम भारतवर्ष की वर्तमान आवश्यकताओं के प्रश्न पर विचार करते हैं तो भारत की उस

शोचनीय दशा से हमारी मुठभेड़ हो जाती है, जिसमें एक ही पवित्र भूमि में रहने के सम्बन्ध या बंधन की बिल्कुल परवाह नहीं होती। इसका तात्पर्य यह निकलता है कि हममें पड़ोसी के प्रेम का शोचनीय अभाव है। धार्मिक सम्प्रदायों ने सच्चे मनुष्यत्व को और इस भाव को कि हम सब एक ही राष्ट्र के अंग हैं, ढंक दिया है।

हिन्दुस्तान में मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ एक ही जगह रहते हुए पीढ़ियों-पर-पीढ़ियाँ व्यतीत हो गईं; पर हिन्दुस्तान में अपने पड़ोस में रहनेवालों की अपेक्षा वे दक्षिण यूरोप के तर्कों के साथ सहानुभूति दिखाते हैं। एक बालक, जो हिन्दू बाप के रक्त-मांस से बना है, ज्योंही ईसाई हो जाता है त्योंही वह एक गली के कुत्ते से भी ज्यादा अपरिचित बन जाता है। मथुरा का एक कट्टर द्वैतवादी वैष्णव दक्षिण के एक द्वैतवादी वैष्णव के लाभ के लिए और अपने ही नगर के अद्वैतवादी वेदान्ती का मान भंग करने के लिए क्या नहीं करता? यह सारा दोष किसका है? मत-पन्थों के पक्षपात और खोखले ज्ञान का, जो सब जगह एक-सा है। इस अंगरेजी कहावत का कि "शत्रु साथ-साथ रहते हैं" वर्तमान भारत की दशा के लिए आरोप करना गलत न होगा। यहाँ एक-राष्ट्रीयता का विचार मात्र भी एक अर्थहीन कल्पना हो गई है। इसका कारण क्या है? इसका स्पष्ट कारण मरे हुए मुर्दों की लकीरों से अन्धे होकर फकीर हो जाना और ऊट-पटांग पक्षपातों की, जो धर्म के पवित्र नामों से पुकारे जाते हैं, घोर दासता

है ! या यों कहो कि प्रमाण-पालन का चिकना-चुपड़ा नाम देकर आध्यात्मिक आत्मघात करना है !

केवल उदार शिक्षा, यथार्थ ज्ञान, सप्रयोग परीक्षण अथवा दार्शनिक विचार-पद्धति के अभ्यास से ही यह असत्य कल्पना दूर हो सकती है और कोई मार्ग नहीं। आधुनिक शास्त्र-शोधन से निकले हुए उत्तम और मनुष्य कर्तव्य सिखानेवाले तत्त्व जिस पंथ या धर्म में हों, उसे कदापि यह अधिकार नहीं है कि वह अपने भोले भक्तों को अपना शिकार बनावे। प्राचीन काल के बहुत-से धार्मिक तत्त्व और प्रथाएं राम के मत से तो केवल उस समय के जाने हुए शास्त्र के नियम और सिद्धान्त थे; परन्तु वाह रे दुर्दैव ! वे तत्व जो पहले बड़े विरोध से माने गये, फिर इस अन्धविश्वास के साथ माने गये कि उनको जन्म देनेवाली माता अर्थात् स्वतन्त्र विचार और निदिध्यासन का गला घोंट दिया गया ! धीरे-धीरे यह अन्धविश्वास इतना बढ़ गया कि एक बालक 'मैं मनुष्य हूँ' यह समझने के पहले ही अपने को हिन्दू, मुसलमान अथवा ईसाई कहने लगा। जब मत-मतान्तरों पर चलनेवालों के आलस्य व जड़ता के कारण व्यक्ति-विशेष और ग्रन्थों के प्रमाणों के आधार पर धार्मिक रीति-रिवाज़ माने और स्वीकार किये जाने लगे और जब स्वयं अभ्यास, मौलिक, अन्वेषण आतुर्य और ध्यान इत्यादि, जिनसे धर्म-संस्थापकों ने आध्यात्मिक और आधिभौतिक प्रकृति, तथा उसके नियमों का दक्षता के साथ अध्ययन किया था, लोप होने

लगे, तब सृष्टि के नियमानुसार धर्म की अवनति आरम्भ हो गई। शनैः शनैः ईसा मसीह के गिरी-प्रवचन अथवा वैदिक यज्ञों की असली उद्देश्यों को तिलांजलि दी जाने लगी और उन मत-मतान्तरों के चलानेवालों के नामों की पूजा बड़ी श्रद्धा से होने लगी। केवल इतना ही नहीं हुआ, वरन् देह (शिव) की पूजा करने की अभिलाषा से देही (शिव) का हनन कर दिया गया।

ईसा, मुहम्मद, व्यास, शंकर इत्यादि सत्यनिष्ठ और निष्कपट महात्मा थे। उन्होंने प्रकृति-रूपी मूल-ग्रन्थ के अनन्त का अध्ययन करके इधर-उधर का थोड़ा बहुत (अपूर्ण) ज्ञान प्राप्त किया और अपनी बुद्धि के अनुसार धर्म-ग्रन्थ लिखे; किन्तु उनके अनुयायी उन्हें पैगम्बर या अवतार का झूठा नाम देकर तथा उनके ग्रंथों की वाणी को "आदि सत्य, युगादि सत्य, है सत्य, हो भी सत्य" मानकर उसकी व्याख्या करते हैं, जो निश्चय ही प्रकृति के मूल ग्रन्थ के विरुद्ध (असत्य और अपूर्ण) है और ऐसा करके वे अज्ञानवश अपने गुरु और उनके ग्रन्थ का अपमान करने-कराने का कारण होते हैं।

राम के कहने का यह अभिप्राय नहीं है कि लोक संग्रह के लिए इन धार्मिक रीतियों का कोई उपयोग ही न था। किसी समय इनका उपयोग अवश्य था। इन रीतियों की आवश्यकता ठीक वैसी ही थी, जैसे किसी बीज के जीवन और बाढ़ के लिए यह आवश्यक है कि वह बीज एक छिलके से कुछ काल तक ढंका रहे। परन्तु उस नियमित काल के पश्चात अर्थात् उस बीज

के कुछ उगने पर यदि वह छिलका नहीं गिरेगा तो वह बढ़ते हुए दाने के लिए एक कारागार बन जायगा और उसकी बाढ़ को रोकेगा। हमें छिलके की अपेक्षा दाने का विशेष ध्यान रहना चाहिए; क्योंकि छिलके को, जो दाने की बाढ़ को रोकता है, अलग कर देने के लिए अर्थात् दूसरों के सड़े-गले जूठे विचारों से छुटकारा पाकर प्रकृति के मूल-ग्रन्थ को पढ़ने के लिए प्रत्येक मनुष्य को यह अनुभव करना आवश्यक है कि पैगम्बर की शक्ति अलौकिक नहीं है, वह मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।

कुछ लोग ऐसे हैं, जिनकी समझ में किसी मकान का ढांचा या नक्शा उस समय तक नहीं आता जबतक की मकान बनकर उनके सामने तैयार न हो जाय। इसी प्रकार के कुछ लोग ऐसे हैं, जिनके ध्यान में वर्तमान काल अथवा भूतकाल से एक परमाणु भी आगे बढ़ने का विचार नहीं आता। परन्तु आशा की जाती है कि ऐसे लोगों की संख्या भारतवर्ष में बहुत न्यून हो जाती है। वर्धनशील वेदान्त Dynamic Vedant का अभिप्राय जैसा राम ने समझा है, यह है कि लोगों की ढुल-मुल-यकीनी अशांति और चंचलता दूर कर दे और उनको स्वाभाविक ऐश्वर्य, एकता और विश्व-प्रेम का अनुभव करा दे तथा स्वाभाविक भेदभावों से एक स्थाई व स्वाभाविक मेल प्राप्त करा दे। ऐसे वेदान्त की किस देश में आवश्यकता नहीं है? भारतवासियों को तो इसकी अत्यन्त आवश्यकता है।